सम्पूर्ण विश्व : अपना परिवार
(वसुधैव कुटुम्बकम्)

एस॰ कौसर लईक़

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

''अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है''

दो शब्द

इस जगत् में मुनष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बात दुनिया की तरक़्क़ी और उसकी नई-नई खोजों को देखने से साफ़ तौर पर मालूम होती है। इस दुनिया में जो कुछ हलचल है, वह मनुष्य ही के कारण है। इस सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहे जानेवाले मनुष्य की ओर से जब एक-दूसरे पर ज़ुल्म और अत्याचार की घटनाएँ सामने आती हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य निकृष्टतम प्राणी बन गया है। एक देश दूसरे देश के लोगों को अपने से कमतर समझता है और अपने को बरतर। इसी तरह एक ही देश में रहनेवाले अपने ही देशवासियों को नुक़सान पहुँचाने और उनपर अत्याचार करने में कोई कमी नहीं करते। क्या कभी हम मनुष्यों ने यह सोचा कि हमको दुनिया में पैदा करनेवाली कौन सत्ता है और उसने हमें यहाँ क्यों भेजा है। क्या उसने हमें रहने-सहने के सम्बन्ध में कुछ दिशा-निर्देश भी दिए हैं या नहीं! सच्ची बात यह है कि हमें पैदा करनेवाली एक सर्वोच्च सत्ता है, जिसे हम परमात्मा, ईश्वर, ख़ुदा या अल्लाह के नामों से पुकारते हैं। उस सर्वशक्तिमान ईश्वर ने हमें जीवन गुज़ारने का रास्ता भी अवश्य बताया है। उसने हमें यह भी बताया है कि मरने के बाद हमें ईश्वर के पास जाना है और अपने कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा बदला पाना है। आज जो धर्म पाए जाते हैं, सम्भवतः ईश्वर के भेजे हुए वे दिशा-निर्देश ही हैं, जो मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए भेजे गए हैं। यह और बात है कि उनमें परिवर्तन हो गया हो।

दुख की बात यह है कि इन धर्मों के माननेवाले अपने-अपने धर्मों में आस्था तो रखते हैं, परन्तु यह जानने की कोशिश नहीं करते कि उनमें हमारे लिए क्या मार्गदर्शन है।

प्रस्तुत पुस्तक ''सम्पूर्ण विश्व : अपना परिवार'' का उद्देश्य यही है कि

हम मनुष्य की हैसियत को पहचानें और इस सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों से मार्गदर्शन प्राप्त करें। धर्मों का स्पष्ट कहना है कि इस धरती पर सारे मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं और सब एक ही माता-पिता की सन्तान हैं। इस वास्तविकता को समझ लेने के बाद इस दुनिया की अधिकतर समस्याएँ खुद-ब-खुद हल हो सकती हैं और मनुष्यों का परस्पर ज़ुल्म व अत्याचार समाप्त हो सकता है, क्योंकि हम दूसरे पर अत्याचार या उसको नुक़सान पहुँचाने की कोशिश इसी लिए करते हैं कि हम उसे ग़ैर समझते हैं। जब हम उसे अपना भाई समझेंगे तो उस पर अत्याचार करने से स्वतः ही रुक जाएँगे।

इस पुस्तक में विशेषकर हिन्दू, ईसाई और इस्लाम धर्म से इस सम्बन्ध में शिक्षाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली) का मूल उद्देश्य यही है कि पुस्तकों और लिट्रेचर के ज़रिए से धर्म की रौशनी को प्रस्तुत किया जाए। हमारी यह कोशिश सफल हो और हम मानवता से काम ले सकें, यही हमारी कामना है।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट
(दिल्ली)
20-9-2018

सम्पूर्ण विश्वः अपना परिवार

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम् ॥
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम ॥
(महोपनिषद् 6/71-72)

सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता ईश्वर है। वही इस सृष्टि का नियंता और संचालक है। इस पृथ्वी सहित किसी भी पिण्ड में, जहाँ कहीं भी कोई चीज़ मौजूद है, उन सबका स्वामी, आक़ा, मालिक वही एक ईश्वर है। इस पृथ्वी पर बसनेवाली सम्पूर्ण मानवजाति लाक्षणिक रूप से उसी की संतति, उसी की औलाद है और हक़ीक़त यह है कि रचना की दृष्टि से भी कोई किसी से भिन्न नहीं है। यह तथ्य वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से भी सिद्ध हो चुका है और इनसानी-तर्क से भी। धर्मशास्त्रों, विद्वानों और गहन चितन-मनन करनेवालों ने यह भी सिद्ध किया है कि इस जगत् में पाई जानेवाली जीवित व अजीवित चीज़ों व प्राणियों में मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य का स्थान सर्वोपरि यानी सबसे ऊँचा है। यदि सम्पूर्ण जगत् को एक शरीर माना जाए तो मनुष्य इसमें सिर का स्थान रखता है। मनुष्य ही है जिसे चिंतन, मनन और सोच-विचार की शक्ति दी गई है। उसे अपने विकास हेतु अपना उपाय करने की ताक़त प्रदान की गई है। मनुष्य ही है जिसमें संगठित होकर और समाज के रूप में रहने की उत्कट प्रेरणा पाई जाती है। अगर हम विचार करें तो मालूम होगा कि हर मनुष्य एक-दूसरे का पूरक है। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के साथ रहना चाहता है। एक-दूसरे को अपना हमदर्द और अपने परिवार की तरह महसूस करता है। इन सबके बाद मनुष्य को जो चिंतन-मनन की छूट दी गई है, उसका नकारात्मक पक्ष यह है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बुद्धि (मानस) को प्रदूषित कर सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अच्छे विचारों को बुरे विचारों में ढाल सकता है। यहीं मनुष्य की परीक्षा और आजमाइश शुरू हो जाती है। इसी का स्वार्थी तत्व अपना अनुचित लाभ उठाते रहते हैं। एक-दूसरे के विरुद्ध बातें करके मित्र को शत्रु में परिवर्तित कर देते हैं। कुवृत्ति के लोगों ने आज मानवजाति

को टुकड़े-टुकड़े में बाँटकर रख दिया है। आज सम्पूर्ण मानवजाति विभिन्न गरोहों, सम्प्रदायों, वर्णों और जातियों में विभक्त होकर रह गई है। इतना ही नहीं कि लोग बटे हुए हैं, बल्कि एक गरोह दूसरे गरोह को, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को अपना शत्रु, अपना विरोधी मानकर मिटा देने में तत्पर है। किसी ने क्षेत्र के आधार पर अपना एक गरोह बना रखा है, तो कोई रंग, रूप और धर्म के आधार पर गुटबंदियों में लगा हुआ है। जबकि हक़ीक़त यह है कि कोई किसी से भिन्न व विलग नहीं है। लोग अपने मूल को भुलाकर मानव द्वारा रचित मनघड़ंत कहानियों में आकर इस अज्ञानता में पड़े हुए हैं कि वे एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं, वरन् श्रेष्ठ हैं। हर गरोह व समुदाय एक-दूसरे पर प्रभावी हो जाने और अपनी श्रेष्ठता जताने की होड़ में लगा हुआ है। जिस वर्ग को भी शक्ति व ताक़त मिल जाती है, वह उस शक्ति के प्रभाव में आकर पागल की तरह उन्मादग्रस्त हो जाता है। उसके लिए किसी मर्यादा, नैतिकता और मानवता का कोई अर्थ नहीं रहता। यथा आज यूरोपीय जाति को शक्ति मिली हुई है, वह अन्य को मिटा देने में मजनून नज़र आ रहा है। इसी प्रकार इस्लाम-विरोधियों को कुछ सत्ता-शक्ति मिली हुई है, तो मुसलमानों को ही मिटा देने और उनके उन्मूलन में व्यस्त हैं।

हमारा भारतीय समाज अनेक धर्मों, जातियों और रूप-रंगों का संग्रह है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी इत्यादि सम्प्रदाय पाए जाते हैं। हिन्दू सम्प्रदाय भी उच्च वर्ण और निम्न वर्ण में बँटा हुआ है। उच्च वर्ण में विशेषकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के लोग आते हैं, जबकि निम्न वर्ण में इनके अलावा तमाम जातियाँ हैं, जिन्हें व्यापक शब्दों में दलित या पिछड़ी जाति कहा जाता है। हिन्दू जाति के उच्च वर्ण को पहले की तुलना में आज हर क्षेत्र में पूर्ण-शक्ति प्राप्त है। चाहे प्रशासनिक क्षेत्र हो या व्यापारिक या रक्षात्मक; सभी में वे सबसे बढ़कर हैं। मनुष्य का अपना विकास करना या विकसित हो जाना कोई दोष नहीं, किन्तु विकास और शक्ति प्राप्त करके अन्य के प्रति शत्रुता व घृणा का व्यवहार करना और शक्ति के उन्माद में न्याय और नैतिक मर्यादा का तोड़ना सबसे बड़ा दोष ही नहीं, वरन् मानवता के प्रति एक जघन्य अपराध है। अपने से इतर जाति

और वर्ग पर अत्याचार करने और उन्हें अपना शत्रु समझने का अपराध दुनिया की अन्य तमाम क़ौमें कर रही हैं, उन्हें अनदेखा करते हुए मैं अपनी भारतीय क़ौम से निवेदन करना चाहूँगा कि उसकी तरफ़ से जो भी नीति अपनाई जाए उसमें अपनी मर्यादा और शिक्षा व आदर्श का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। हमारी भारतीय संस्कृति एवं मूल शिक्षा क्या है? इसकी एक झलक पेश करना चाहूँगा।

हिन्दू धर्म का आधार वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण, स्मृति इत्यादि ग्रंथों पर है। इन ग्रंथों में वेद-ग्रंथों का स्थान सर्वोपरि है। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों के बाद जिन ग्रंथों का सर्वोपरि स्थान है, वह ब्राह्मण और आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथों का है। उपनिषद् ग्रंथों में एक उपनिषद् 'महोपनिषद्' है। इसी का मंत्र लेख के आरंभ में दिया गया है। यह उपनिषद् सामवेदीय परम्परा से है और एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है। यह शुकदेव जी एवं महाराज जनक तथा महर्षि ऋभु एवं उनके पुत्र निदाघ के मध्य प्रश्नोत्तर के रूप में अस्तित्व में आई है। इसमें ईश्वर के अद्वितीय और एक अकेला शक्तिमान होने के विवेचन के पश्चात् सृष्टि के आरंभ में क्या था और सृष्टि का आरम्भ कैसे हुआ, मोक्ष की स्थिति, दृश्यजगत् का मिथ्यात्व, अहंभाव का त्याग, ज्ञानी-पुरुषों की उपासना-पद्धति, अज्ञानियों की दुखद स्थिति, उदारता, उच्च और निम्न-अधम पुरुषों के गुण आदि पर प्रकाश डाला गया है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति कैसा व्यवहार करे और मानवजाति किस रीति से दुख एवं विषाद को प्राप्त नहीं होती इस संदर्भ में उपनिषद में कहा गया है–

> "जो मनुष्य नित्य प्राप्त कर्मों को करता है, शत्रु और मित्र को सम्यक् (समान) दृष्टि से देखता है और इच्छा-अनिच्छा से मुक्ति प्राप्त कर चुका है, न विषाद करता है, न किसी भी तरह की वस्तुएँ पाने की आकांक्षा करता है, मृदुभाषी (मीठी बोली बोलता) है। प्रश्नों के पूछने पर नम्रतापूर्वक उत्तर देता है तथा समस्त प्राणियों के भावों को जानने में सक्षम है वह मनुष्य इस विश्व में विषाद (दुख व उदासी) को प्राप्त नहीं होता।" (महो॰ 6/64-65)

इस संसार में किस प्रकार रहा जाए, इस संदर्भ में महर्षि ऋभु अपने तपस्वी बेटे निदाघ को समझाते हुए कहते हैं–

"(आवश्यकता पड़ने पर) बाह्य वृत्ति (कार्यों) से बनावटी क्रोध का अभिनय करते हुए एवं हृदय से क्रोधरहित, बाहर से कर्त्ता एवं अन्दर से अकर्त्ता बने रहकर शुद्धभाव से जगत् में सर्वत्र रमण करो। अहं (मैं कुछ हूँ अर्थात अभिमान) को त्याग कर शांत-चित्त हो, कलंक रूपी कालिमा (कालिख) से सदैव के लिए मुक्त हो जाओ। आकाश के समान शुद्ध-परिष्कृत जीवन प्राप्त करके पवित्र सद्बुद्धि को धारण करके लोक (जगत्) में विचरण करो।"

(महो. 6/68-69)

अर्थात नसीहत की गई कि आवश्यकता पड़ने पर यदि किसी पर क्रोध करने की ज़रूरत पेश आए तो क्रोधाग्नि में न जल उठना और न ही क्रोध अन्दर से होना चाहिए, बल्कि वह मात्र दिखावे का क्रोध होना चाहिए, क्योंकि क्रोध एक ऐसा दोष है कि लोग इसके वशीभूत होकर नीति और सुआचरण को भूल जाते हैं। इसी प्रकार कोई भी कार्य करने में बाह्य रूप से तुम कार्य करनेवाले दिखाई तो दो, लेकिन इसका ध्यान रखो कि वास्तविक कार्यकरनेवाला कर्त्ता ईश्वर है। अतः किसी भी कार्य में तुम अहंकार या अभिमान न करना। आगे और कहा कि हर व्यक्ति–

"उदार एवं उत्तम आचरण से सम्पन्न, सभी श्रेष्ठ आचार-विचारों को अनुगमन करते हुए अन्दर से आसक्ति-रहित होते हुए भी बाहर से सदैव प्रयत्न करता रहे। अंतःकरण में पूरी तरह से वैराग्य को धारण करते हुए बाहर से आशावादी बनकर श्रेष्ठ व्यवहार करे।"

(महो. 6/70-71)

अन्ततः अपने पुत्र के माध्यम से महर्षि ऋभु मानवजाति पर स्पष्ट करते हैं कि संकीर्ण बुद्धि एवं तुच्छ व्यक्ति की सोच और विशालहृदय एवं उदारचेता व्यक्ति के विचार किस प्रकार के होते हैं। कहा–

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥
(महो. 6/71-72)

"यह मेरा अपना है और वह नहीं है, ऐसे निकृष्ट विचार तुच्छ (अधम) मनुष्यों के होते हैं। उदार चरितवालों (अर्थात् विशालहृदय रखनेवालों) के लिए तो समस्त वसुधा ही अपना परिवार है।"

महर्षि ऋभु की यह शिक्षा कि 'समस्त वसुधा (पृथ्वी) ही अपना परिवार है, अर्थात् पृथ्वी पर बसनेवाला हर व्यक्ति अपने परिवार, अपने कुटुम्ब का है– हमारे भारत की उदारता के संदर्भ में हमारी विचारधारा और दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। इसके साथ ही बताती है कि उदारता और विशालहृदय रखनेवालों की सोच क्या और कैसी होनी चाहिए। व्यापक भाव-स्वरूप कह सकते हैं कि महान् शीलवान और सद्गुणी लोग अत्यंत उदारचेता और कुशादादिल होते हैं। उनके लिए समस्त मानवजाति अपने कुटुम्ब और परिवार के समान होती है। वे प्रत्येक व्यक्ति की तकलीफ़ और कष्ट को ऐसा ही महसूस करते हैं जैसा कि अपने सगे भाई की पीड़ा को अपनी पीड़ा।

इसके साथ ही यह मंत्र बताता है कि तुच्छ, निकृष्ट, नीच और अधम व्यक्तियों का एक प्रमुख लक्षण यह है कि वे किसी को अपना तो किसी को पराया समझते हैं। वे किसी मासूम के पीड़ित होने पर दुखी होते हैं तो किसी के पीड़ित होने पर जश्न मनाते हैं। उनके अन्दर मानवजाति के विभाजन के आधार उनके अपने निहित स्वार्थ, तुच्छ विचारधारा और वर्ण-जाति व धन-दौलत आदि होते हैं और कुछ नहीं तो क्षेत्रीयता ही उनके पक्षपात और भेद-भाव की बुनियाद बन जाती है।

उपनिषद् की इस शिक्षा के प्रकाश में हम उन लोगों के प्रति कि वे किस श्रेणी में हैं, निर्णय ले सकते हैं, जो लोग नियंत्रण रेखाएँ (Line of Control) खींचकर और उस रेखा-परिधि के अन्दर के लोगों के प्रति मात्र या अपनी एक स्वनिर्मित विचारधारा के माननेवालों के प्रति ही अपनी हमदर्दी और आत्मीयता, मित्रभाव और शुभ-चिंतन रखते है और शेष को शत्रु, अनात्मीय, अनिजक, पराया और ग़ैर समझते हैं। अतः लोगों को बाँटनेवाले और मानजाति में भेदभाव पैदा करनेवाले इस उपनिषद् की शिक्षा

की दृष्टि में निहायत तुच्छ, नीच और निकृष्ट श्रेणी के लोग होते हैं।

क़ुरआन भी उपनिषद् के मंत्र का समर्थन करता है। मनुष्य पर उसकी आदि उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि तुम एक ही मानव की संतान हो, लोगों में विभाजन पैदा करने से डरो–

"ऐ लोगो! अपने रब का डर रखो, जिसने तुम को एक जीव से पैदा किया और उसी जाति का उसके लिए जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ फैला दीं।"

(क़ुरआन 4/1)

इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करते हुए क़ुरआन में कहा गया–

"ऐ लोगो! हमने (यानी ईश्वर ने) तुम्हें एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया।" (क़ुरआन 49/13)

अन्त में स्पष्टतः कहा–

"समस्त मानव एक ही समुदाय है।" (क़ुरआन 2/213)

क़ुरआन ने मनुष्य-मनुष्य में भेद-भाव करने को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है। क़ुरआन की दृष्टि में मानवीय आधार पर सभी मनुष्य एक समान पवित्र, सम्माननीय और अधिकार में समकोटीय एवं बराबर हैं। मानवीय स्तर पर न कोई किसी से अधिक प्रतिष्ठित है और न कोई किसी से निम्न व अछूत। मनुष्य इस पृथ्वी पर ही नहीं, बल्कि ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी रहता है सभी एक समान रूप से भाई-भाई और आदर योग्य हैं। दूसरे शब्दों में यह कि वे सब हमारे अपने कुटुम्ब और अपने परिवार अपने ही नस्ल के हैं। हमारी हमदर्दी, उन सबके साथ एक समान रूप से होगी।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपने साथियों से कहा–

"तुम मोमिन (ईश्वर के निष्ठावान प्रिय भक्त) नहीं हो सकते जब तक कि एक-दूसरे पर दया न करो।"

यह सुनकर साथियों ने कहा कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति दया-भाव रखता है, तो नबी (सल्ल॰) ने कहा–

"मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि तुम में से कोई मात्र अपने साथी पर दया करे या दया-भाव रखे, बल्कि मेरा अभिप्राय सार्वजनिक

दयालुता से है।" (हदीसशास्त्र : तबरानी)

अर्थात् पैग़म्बर ने सार्वजनिक दयालुता कहकर अपने माननेवालों पर स्पष्ट कर दिया कि समस्त मानवजाति तुम्हारा अपना परिवार और अपने कुटुम्ब के समान है। अतः यदि ईश्वर के सच्चे प्रिय भक्त बनना चाहते हो तो तुम्हें समस्त मानवजाति के प्रति एक समान सहानुभूति, अनुकंपा, संवेदना, अनुग्रह एवं करुणा व प्रीति-प्रेम रखना होगा। दूसरे शब्दों में यह कि जो ईश्वर के सच्चे भक्त यानी मोमिन होते हैं उनके हृदय में समस्त मानवजाति के प्रति एक समान रूप से आत्मीयता, प्रेम, सुहृदयता, साधुभाव, सौमनस्य, सहानुभूति एवं दयालुता पाई जाती है। इसके विपरीत जो ईश्वर के प्रिय भक्त नहीं होते उनमें कठोरता, निष्ठुरता, नृशंसता, क्रूरता, धोखा, अन्याय, छल, कपट, धांधली, धूर्तता, स्वार्थवादिता, झूठ, फरेब और पैशाचिक आदि दुर्गुणों का साम्राज्य होता है। उन्हें मानव-मानव में भेद करके उनको तबाहो-बरबाद होते देखकर एक विचित्र खुशी का एहसास होता है। उन निष्ठुर, हृदयहीन एवं पत्थरदिलों की प्रतिक्रियाएँ भी अपनी क्रूरता को लिए हुए सामने आती हैं।

महाभारत की दृष्टि में जो लोग परस्पर भेद-भाव रखते हैं वे न ही धर्माचारी होते हैं और न ही सुखी रहते हैं और न ही ऐसे लोगों को कभी सच्चा गौरव प्राप्त हो सकता है और अन्ततः फूट एवं भेद डालनेवालों का भाग्य विनाश ही होता है। नीतिज्ञ विदुर महाराज घृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं–

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं,
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति,
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।।
(उद्योग 36/56)

अर्थात् "जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। वे सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा उन्हें शांति की वार्ता भी नहीं सुहाती।"

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं,
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं,
न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात्।।
(उद्योग 36/57)

अर्थात् "हित की बात भी कही जाए तो उन्हें (भेद पैदा करनेवाले लोगों को) अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन्! भेदभाव वाले पुरुषों की विनाश के सिवा और कोई गति नहीं है।"

बाइबल में भी मानव-मानव से प्रेम एवं मुहब्बत रखे, इसकी ताकीद की गई है और कहा गया है कि जिसके हृदय में मानव-प्रेम नहीं, वह ईश्वर को जानता ही नहीं। यूहन्ना अपने अनुयायियों को संबोधित करते हुए जनसामान्य से कहते हैं–

"हे प्रियो! हम आपस में प्रेम रखें, क्योंकि प्रेम परमेश्वर से है। जो कोई प्रेम करता है, वह परमेश्वर से जन्मा है और परमेश्वर को जानता है। जो प्रेम नहीं रखता (अर्थात् क्रूर है), वह परमेश्वर को नहीं जानता, क्योंकि परमेश्वर प्रेम है।" (1 यूहन्ना 4/7-8)

"मैं तुम्हें एक नई आज्ञा देता हूँ कि एक-दूसरे से प्रेम रखो जैसा मैंने तुमसे प्रेम रखा है, वैसा ही तुम भी एक-दूसरे से प्रेम रखो।"
(यूहन्ना 13/34)

बाइबल में एक और स्थान पर कहा गया है कि मनुष्य के हृदय में यदि प्रेम नहीं है और वह नेक कर्म करता है तो उसके सभी भले कर्म निरर्थक हैं और वह देखने में कितना ही भला क्यों न नज़र आए, मगर वह भला नहीं माना जाएगा। कहा गया–

"यदि मैं मनुष्य और स्वर्गदूतों (फरिश्तों) की बोलियाँ बोलूँ और प्रेम न रखूँ तो मैं ठनठनाता हुआ पीतल और झनझनाती हुई झाँझ हूँ। यदि मैं भविष्यद्वाणी कर सकूँ और सब भेदों और सब प्रकार के ज्ञान को समझूँ और मुझे यहाँ तक पूरा विश्वास हो कि मैं पहाड़ों को हटा दूँ, परन्तु प्रेम न रखूँ तो मैं कुछ भी नहीं। यदि मैं

अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति कंगालों को खिला दूँ या अपनी देह जलाने के लिए दे दूँ और प्रेम न रखूँ तो मुझे कुछ भी लाभ नहीं।"

(बाइबल, 1 कुरिन्थियो 13/1-3)

अर्थात् प्रेम-विहीन हृदय होने पर व्यक्ति कितना ही नेक कर्म क्यों ना करता रहे, सब कुछ निरर्थक है।

जिसके हृदय में मानव एवं ईश्वर-प्रेम बस जाता है, तो प्रेम उस पर कैसा प्रभाव डालता है और प्रेम का स्वरूप क्या है? बाइबल कहती है—

"प्रेम धीरजवन्त है, और कृपालु है, प्रेम डाह नहीं करता, प्रेम अपनी बड़ाई नहीं करता और न फूलता (यानी घमण्ड नहीं करता)। वह अनरीति नहीं चला, वह अपनी भलाई नहीं चाहता, झुँझलाता नहीं, बुरा नहीं मानता। कुकर्म से आनन्दित नहीं होता, परन्तु सत्य से आनन्दित होता है। वह सब बातें सह लेता है, सब बातों की प्रतीति करता है, सब बातों की आशा रखता है, सब बातों में धीरज धरता है।" (1 कुरिन्थियो 13/4-7)

अतः जिसके हृदय में प्रेम होता है तो वह धैर्यवान, कृपालु, ईर्ष्याहीन, अभिमानहीन, निरहंकारी, सुपथगामी, कोमलस्वभाववाला, नर्महृदय और सहनशील होगा। वह लोगों के कटु वचन बोलने पर भी क्रोध में आकर प्रतिशोध लेनेवाला नहीं होता। वह दुष्ट एवं बुरे लोगों के साथ भी सद्व्यवहार करता है।

इस्लाम धर्म के हदीस-शास्त्र की पुस्तक तिरमिज़ी में है कि ईश्वर के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के एक साथी (सहाबी) ने उनसे पूछा कि यदि मैं किसी व्यक्ति के निकट से जाऊँ और वह न तो मेरे मिलने का हक़ अदा करे और न मेरा सत्कार करे और जब वह मेरे पास आए तो मैं उसका सत्कार करूँ या मैं उससे उसकी बदसलूकी का बदला लूँ? इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में ईश्वर के संदेशवाहक (पैग़म्बर सल्ल॰) ने कहा कि नहीं, बल्कि तुम उसका सत्कार करो, उसके साथ अच्छा व्यवहार करो।

इसी प्रकार एक अवसर पर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने लोगों को नसीहत करते हुए कहा कि तुम इस नियम की पाबंदी करो कि यदि लोग तुम्हारे साथ अच्छा

व्यवहार करें तो तुम्हें उनके साथ अच्छा व्यवहार करना ही है और यदि वे दुर्व्यवहार करें तो इस दशा में भी तुम दुर्व्यवहार व अत्याचार की नीति कदापि न अपनाओ। (हदीस सौरभ, पृ.164 से भावार्थ)

किसी से भी अवसर पाते ही प्रतिशोध लेना, किसी की अभद्रता पर बदले में दुष्टता, बर्बरता व शिष्टाचारहीनता का व्यवहार अपनाना अपने अन्तःकरण की गरीबी और तुच्छता के अम्बार (भंडार) होने का प्रमाण देना होता है कि उसके अन्दर भी दुर्व्यवहार, अशिष्टता, असंस्कृति का भण्डार एवं गन्दगी छिपी हुई है।

एक बार दो पड़ोसियों में किसी बात को लेकर शत्रुता हो गई। एक पड़ोसी जो अपना कूड़ा-करकट अपने घर में ही जमा करके रखता था, वह अपने दूसरे पड़ोसी को तकलीफ़ पहुँचाने के लिए उसके दरवाज़े पर मौक़ा पाते ही हर रोज़ उसे डाल देता। वह दूसरा पड़ोसी उस कूड़ा-करकट को उठाकर फेंक देता था। इसके उत्तर में वह कूड़ा फेंकनेवाले पड़ोसी के दरवाज़े पर फूलों का ढेर डाल दिया करता। अतः उसने जब ऐसा किया तो दूसरे पड़ोसी ने शर्मिन्दगी के मारे कूड़ा डालना छोड़ दिया। इसी प्रकार जब हम किसी की दुष्टता पर भी अपने अन्तःकरण की विशुद्धता का प्रमाण देते हुए उसके साथ उपकार और सद्व्यवहार अपनाते हैं, तो वह भलाई अवश्यतः अपना प्रभाव छोड़ती है और शत्रु-से-शत्रु के भी हृदय-परिवर्तन में देर नहीं लगती। क़ुरआन में यही शिक्षा दी गई है—

> "भलाई और बुराई बराबर नहीं है। तुम बुराई को उस भलाई से दूर करो, जो बेहतरीन हो। तुम देखोगे कि तुम्हारे साथ जिसकी शत्रुता हो गई थी, वह जिगरी दोस्त बन गया है।"
>
> (क़ुरआन 41/37)

अर्थात् भलाई और बुराई, सदाचार और अत्याचार एक समान कदापि नहीं हैं। देखने में विरोधी बुराई का कितना ही भयानक तूफान क्यों न ले आए, किन्तु भलाई के मुक़ाबले में बुराई अत्यन्त विवश और कमज़ोर होती है और अन्ततः विनष्ट होकर रहती है। इस शिक्षा में यह जो कहा गया कि तुम भलाई करो तो साधारण नहीं, वरन् उत्तम प्रकार की। इससे ज्ञात हुआ

कि निःस्वार्थभाव के साथ उत्तम दर्जे का सद्व्यवहार उससे अपनाना होगा जो हमारे साथ अत्यन्त निकृष्ट प्रकार की बुराई कर रहा हो। क्योंकि इनसानी स्वाभाव है कि एक-न-एक दिन उस बुरे व्यक्ति को अवश्यतः यह एहसास होकर रहता है कि वह जो कुछ कर रहा है, ग़लत है। क़ुरआन में एक और स्थान पर नेक और उत्तम प्रकृति के ईश-भक्तों का गुण बयान करते हुए कहा गया—

> "उनकी दशा यह होती है कि अपने रब की प्रसन्नता के लिए धैर्य से काम लेते हैं। ईश-प्रार्थना (नमाज़) का आयोजन करते हैं, हमारी दी हुई आजीविका में से एलानिया और छिपे (सत्यपथ में) ख़र्च करते हैं और बुराई को भलाई से दूर करते हैं।"
>
> (क़ुरआन 13/22)

उपकार करनेवाले के साथ उपकार करना, सद्व्यवहार अपनानेवाले के साथ सद्व्यवहार अपनाना मनुष्य का एक साधारण गुण है। यह पशुओं में भी पाया जाता है कि जिससे प्रेम से पेश आया जाए तो वह भी दुम हिलाता है। उत्तम प्रकृति एवं उच्च मानवीय गुण यह है कि जो हमारे साथ अपकार और दुष्टता अपनाए उसके साथ भी अवसर आने पर उपकार की नीति अपनाएँ, उसके साथ भी उसके हितकारी कार्य करें, तभी उच्च प्रकार की मनुष्यता हमारे अन्दर होने का प्रमाण होगा। किसी ने क्या सुन्दर कहा है—

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषुः यः साधुः स साधु सद्भिरुच्यते ॥

अर्थात् "जो उपकारी के साथ अच्छा व्यवहार करता है, उसकी अच्छाई का क्या अर्थ। सच्चा उपकारी वही कहलाता है जो अपने अपकारी (दुष्टता का व्यवहार अपनानेवाले) के साथ भी सद्व्यवहार करे।" महाभारत में भी कहा गया है—

एतावान् पुरुषस्तान कृतं यस्मिन् न नश्यति।
यावच्च कुर्यादन्योसस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः ॥
(महाभारत 1/156/14)

अर्थात् "जिसके प्रति किया हुआ उपकार उसका बदला चुकाए बिना नष्ट नहीं होता, वही पुरुष है (और इतना ही उसका पौरुष अर्थात् मानवता है कि) दूसरा मनुष्य उसके प्रति जितना उपकार करे, वह उससे भी अधिक उस मनुष्य का प्रत्युपकार कर दे।"

जब मनुष्य अपने अन्दर दूसरे के प्रति आत्मीयता और अपना होने का भाव पैदा कर लेता है, तो उसके हृदय में स्वभावतः दूसरे के प्रति उपकार, भलाई, हितचिंतन और परमार्थ व कल्याण एवं करूणा की भावना जाग उठती है। इसी लिए उपनिषद्कार ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चिन्तन को विशालहृदयता, उच्चमनस्कता, शुद्धचित्तता और सौहार्द्र का पयार्य और 'अयं बन्धुरयं नेति गणना' को अत्यन्त तुच्छता और अधम होने का प्रमाण कहा। अतः हमें चाहिए कि यदि हमारे अन्दर ऐसी फूट डालने की भावना, लोगों की एकता और प्रेम को भंग करने का गुण पाया जाता हो तो उसका परित्याग करें और अपने मानव होने का प्रमाण दें और हर उस आचरण एवं व्यवहार को अपनाएँ जिससे लोगों में घनिष्टता, संयुक्तता, जुड़ाव, यकदिली, मेलजोल और एक-दूसरे से अभिन्न होने का गुण और प्रेम पैदा हो। हमें जानना चाहिए कि मज़बूत और सुदृढ़ मूल का वृक्ष भी यदि अकेला होता है तो आंधी क्षणभर में सहज ही उसकी शाखाओं सहित उसे धराशायी कर देती है और इसके विपरीत जब बहुत-से वृक्ष एक साथ होते हैं तो वे एक-दूसरे के सहारे बड़ी-सी-बड़ी आँधी का भी मुकाबला कर लेते हैं। इसलिए हमें चाहिए कि हम एक-दूसरे से मिल-जुलकर एक परिवार की तरह रहने का प्रयास करें। ईश्वर इस दिशा में हमारी मदद करे। (आमीन्)

आओ हम एक-दूसरे के प्रति अपनी भावना व्यक्त करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्।।

अर्थात् "सभी सुखी रहें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुख का भागी न बनना पड़े।"